प्रूफ-रीडिंग जो अब उपेक्षा की शिकार है

प्रकाशन, मुद्रण तथा पत्रकारिता से जुड़े हुए बन्धु 'प्रूफ-रीडिंग' और 'प्रूफरीडर' (हिंदी में इसके लिये क्रमशः 'पाठ-शोधन' तथा 'पाठ-शोधक' शब्द चलाये जा सकते हैं) शब्दों से परिचित हैं। प्रूफरीडर लेखक और प्रेस के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी होता है। लेखक या सम्पादक से पाण्डुलिपि मिलने के बाद से लेकर छपकर तैयार हो जाने तक का सारा दायित्व उसी का होता है। यह अनुभवसिद्ध तथ्य है कि जैसे कोई चिकित्सक अपनी चिकित्सा स्वयं नहीं कर पाता, उसी प्रकार कोई लेखक भी स्वयं की कृति की प्रूफ-रीडिंग नहीं कर सकता। चाहे लेखक दस बार प्रूफ क्यों न देख ले, तब भी त्रुटियों की सम्भावना बनी ही रहती है। अतः प्रूफरीडर की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता।

पाश्चात्य देशों में 'प्रूफ-रीडिंग' कला को अत्यन्त सम्मानित दृष्टि से देखा जाता है तथा वहाँ प्रूफरीडर को उचित आदर दिया जाता है। विदेशों में छपनेवाली पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों से बड़ी कठिनाई से ही प्रूफ की कोई अशुद्धि देखने को मिलेगी, परन्तु भारत में विशेषकर हिंदी-क्षेत्र में अबतक इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। यही कारण है कि हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों में कभी-कभी बड़ी भद्दी भूलें देखने को मिलती हैं। इसके अनेक उदाहरण मेरे सामने हैं।

अपने देश में कुछ ही प्रकाशक ऐसे हैं जिन्होंने 'प्रूफ-रीडिंग' के कार्य को लेखन और सम्पादन के समान महत्त्वपूर्ण मानकर अपने यहाँ 'प्रूफरीडर' नियुक्त किये हैं। अधिकांश प्रकाशक और पत्रिकाओं के संचालक 'प्रूफ-रीडिंग' को सबसे सरल, दायित्वहीन तथा बेगार का काम तथा प्रूफरीडर को हेय दृष्टि से देखते हैं और अपने यहाँ पेशेवर प्रूफरीडर नहीं रखना चाहते हैं। हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् आचार्य शिवपूजन सहाय (1893-1963) न केवल एक अच्छे सम्पादक, वरन् एक बहुत अच्छे प्रूफरीडर भी थे। उन्होंने हिंदी के अनेक दिग्गज साहित्यकारों की कृतियों को प्रूफ-रीडिंग करके परिष्कृत और पठनीय बनाया। शिव बाबू ने प्रूफ-रीडिंग की कला सिखाने तथा प्रूफरीडरों को तैयार करने के लिये विद्यालय तथा परीक्षा का प्रबन्ध करने पर बल दिया था। उन्हीं के शब्दों में, 'हमारे प्रकाशक और प्रेसों के मालिक सस्ते-से-सस्ते प्रूफशोधक खोजते हैं। उनकी दृष्टि में प्रूफशोधक एक निरीह प्राणी है, फिर भी बेचारा उनकी दया का पात्र नहीं! उसका अस्तित्व अनिवार्य नहीं समझा जाता! कितने ही प्रेसाध्यक्ष प्रूफरीडर रखने की आवश्यकता ही नहीं समझते।

सचमुच हिंदी-जगत् के अनेक प्रेसों में प्रूफरीडर हैं ही नहीं। बहुत-से पत्र-पत्रिका-कार्यालयों में भी प्रूफरीडर नहीं रखे जाते। छोटे-मोटे प्रकाशक, जिनके पास अपना प्रेस नहीं है, दूसरे प्रेसों पर ही निर्भर रहते हैं, नहीं तो किसी लेखक या विद्वान् से ही काम लेते हैं। किन्तु प्रत्येक लेखक अच्छा प्रूफरीडर नहीं हो सकता। विद्वान् से प्रूफ-रीडिंग कराना तो तभी उचित है, जब कोई अत्यन्त महत्त्वशाली ग्रंथ छप रहा हो। पर विद्वानों में भी अच्छे प्रूफरीडर बहुत कम ही होते हैं। यह आवश्यक भी नहीं कि हरएक विद्वान् सुयोग्य सम्पादक और प्रूफरीडर भी हो। लेखक या विद्वान् जितना समय और दिमाग़ प्रूफ में लगाएगा, उतने में वह सुन्दर साहित्य की रचना कर सकता है।

हमें पता है कि हिंदी-संसार के अनेक यशोधन विद्वानों का काफी से ज्यादा समय प्रूफ देखने में बरबाद हो

गया है और अब भी हो रहा है। यदि इस कला की शिक्षा पाये हुए योग्य व्यक्ति सुलभ होते, तो अनेक विद्वानों के जीवन के अमूल्य क्षण साहित्य-सृष्टि के लिए बच पाते।... सरल उपाय यह है कि प्रूफ-रीडरों को तैयार करने के लिए विद्यालय और परीक्षा का प्रबन्ध किया जाय। पत्रकार विद्यालय चाहे जब खुले, पहले प्रूफ-रीडिंग की कला सिखाने के लिए मुख्य केन्द्र-स्थानों में संगठित प्रयत्न होना चाहिये। नहीं तो लेखकों और सम्पादकों का सारा परिश्रम निष्प्रयोजन एवं निष्फल होता रहेगा। इससे हिंदी की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा भी संकटापन्न होगी। जब हमें इस समय हिंदी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा की पद-मर्यादा के योग्य बनाना तथा अपने साहित्य का नवनिर्माण करना है, तब यह आवश्यक है कि हम अपनी भाषा की हरएक छोटी-बड़ी समस्या पर गहराई से विचार करते रहने में तत्पर हों, और हम समझते हैं कि प्रूफ-रीडिंग की कला सिखाने तथा इस कला को उन्नत करके हिंदी का मान बढ़ाने की समस्या सर्वापेक्षा महत्त्वपूर्ण है।'

('साहित्य' त्रैमासिक, वर्ष 2, अंक 2, अप्रैल 1951)।

प्रूफरीडर को अपनी भाषा का, उसके व्याकरण, वर्ण-विन्यास तथा विरामादि चिह्नों का पूरा ज्ञान होना चाहिये जिनकी सहायता से उसका मुख्य कार्य अशुद्धियों को रेखांकित करना तथा शोधन करना है। जिस विषय का लेख या पुस्तक हो, उसे समझ लेने की बौद्धिक योग्यता भी उसमें होनी चाहिये। परन्तु यह ध्यान रहे कि प्रूफरीडर की अपनी सीमाएँ हैं। वह सम्पादक के रूप में पुस्तक में मनचाहा परिवर्तन नहीं कर सकता। उसे केवल सुझाव देना है कि पुस्तक में क्या कमियाँ हैं और उनका निराकरण कैसे किया जाय। वह पुस्तक की भाषा के बारे भी लेखक को सुझाव दे सकता है और लेखक-प्रकाशक की अनुमति से भाषायी संशोधन भी कर सकता है। प्रूफरीडर का कार्य यह देखना भी है कि पाण्डुलिपि की विषय-सूची के अनुसार सारी सामग्री इसी क्रम से, इन्हीं पृष्ठों पर लगी है अथवा नहीं। यदि कम्पोजिंग के पश्चात् लेखक ने लेखों का क्रम आगे-पीछे किया है, तो विषय-सूची में सुधार हुआ अथवा नहीं, 'फुटनोट' या 'एण्डनोट' ठीक से लगे हैं या नहीं।

इसके साथ ही प्रूफरीडर को 'कम्पोजिंग' तथा मुद्रण की साधारण बातों की जानकारी भी होनी चाहिये। यह जानकारी होने पर ही वह प्रकाशक (आवश्यकतानुसार लेखक और कम्पोजिटर को भी) को पुस्तक की उत्कृष्टता बढ़ाने के लिए सुझाव दे सकता है। जैसे पुस्तक के पृष्ठों की संख्या के अनुसार पुस्तक का आकार क्या होना चाहिये, कौन-सा फॉण्ट इस्तेमाल किया जाना चाहिये, फॉण्ट-आकार कितना होना चाहिये, आदि आदि। वह आवरण-पृष्ठ (कवर) पर के चित्र, अंकन तथा रंगों पर भी सुझाव दे सकता है। वह यह बता सकता है कि शान्त विषय पर भड़काऊ कवर सर्वथा अनुचित है। प्रायः हिंदी के प्रकाशक अपनी पुस्तकों के आवरण-पृष्ठ को कवर-डिज़ाइनर' (आवरण-सज्जाकार) के भरोसे छोड़कर उसकी प्रूफ-रीडिंग नहीं करवाते और बाद में धोखा खाते हैं। यहाँ तक कि स्वयं लेखक भी अपनी पुस्तक का कवर-पृष्ठ उसके प्रकाशन से पूर्व नहीं देख पाता और प्रकाशित होने के बाद ही देख पाता है। ऐसे में त्रुटिपूर्ण आवरण-पृष्ठ छप जाने पर लेखक और प्रकाशक- दोनों की बड़ी किरकिरी होती है ; क्योंकि मुखपृष्ठ पर प्रूफ की ग़लती साक्षात् दृष्टिगोचर होती है और बहुत भद्दी लगती है। इन पंक्तियों के लेखक ने पूरी-की-पूरी पुस्तक को पुनः छापने की अनेक घटनाएँ देखी हैं।

एक कुशल प्रूफरीडर में छिद्रान्वेषिणी शक्ति, दृष्टि की तीव्रता, धैर्य, सजगता तथा श्रमशीलता आदि

गुणों से सम्पन्न होना अनिवार्य अर्हता है। यह कार्य नि:सन्देह अत्यन्त कठिन है। आचार्य शिवपूजन सहाय के शब्दों में, 'इसे (प्रूफ-रीडिंग को) विद्वान् लोग दिमाग को दिक करनेवाला और आँख फोड़नेवाला काम समझते हैं। सचमुच हिंदी का प्रूफ पढ़ना आँखों का इत्र निकालना है। किन्तु यह काम चाहे कितना भी फालतू या मनहूस या नेत्रोत्पीड़क हो, यह तो हर हालत में मानना ही पड़ेगा कि इस काम का महत्त्व भी सर्वोपरि है। यदि प्रूफ ठीक से न देखा जाय, तो अच्छे-से-अच्छे लेख कौड़ी के तीन हो जा सकते हैं। प्रूफ-रीडिंग में कसर रह गई, तो अर्थ का अनर्थ ही हो जायेगा। समस्त पदों में छत्तीस का नाता क्यों है ?— इस तरह के बहुतेरे प्रश्नों का एक ही उत्तर दिया जा सकता है— प्रूफ सावधानता से देखा न गया। ऐसी महिमा है प्रूफ-संशोधन की।'

यह जानकारी मिलती है कि अपने देश में मुद्रण के साथ प्रूफ-रीडिंग की कला भी पश्चिम से आयी है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार, सन् 1439 में जोहान्स गुटेनबर्ग (1398-1468) द्वारा जर्मनी के स्ट्रासबर्ग में आधुनिक चल प्रिण्टर के आविष्कार के बाद, सन् 1499 में लिखे गए एक अनुबन्ध में लेखक पर प्रूफ-रीडिंग की ज़िम्मेदारी का उल्लेख मिलता है।

प्रूफ-रीडिंग में प्रयुक्त लिपि बहुत कुछ संकेत-लिपि से मिलती-जुलती है अर्थात् इसमें व्यक्त होनेवाले लगभग समस्त चिह्न अंग्रेज़ी के ही हैं। हिंदी के अपने स्वतन्त्र चिह्न अबतक देखने में नहीं आये और अंग्रेज़ी के ही चिह्न प्रचलित हैं। उन्हीं चिह्नों से हिंदीवालों का भी कार्य हो जाता है और कोई विशेष कठिनाई अब तक देखने में नहीं आयी। सभी अच्छे कम्पोजिटर इन संकेतों का अर्थ समझते हैं। अत: सदा चिह्नों का ही प्रयोग करना चाहिए और जो भी संशोधन लेख में किया जाय, उसका सांकेतिक चिह्न मार्जिन में अवश्य बना देना चाहिए। कम्पोजिटर मार्जिन के ही चिह्नों को देखता है। इसके साथ ही प्रूफ-रीडिंग सदा ऐसी स्याही से करना चाहिए जो स्पष्ट दिखायी दे। इस कार्य के लिये लाल स्याही ठीक रहती है। पेंसिल का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये। रेखा खींचकर शोधन करने से भी यथासम्भव बचना चाहिये। प्रूफ के ऊपर से रेखा खींचकर फिर मार्जिन में शोधन करने से प्रूफ भद्दा हो जाता है और सारा काग़ज़ रेखाओं से भर जाता है। और यदि रेखाएँ एक-दूसरे को काटकर चली गयी हों, तब तो कम्पोजिटर के लिये 'करेक्शन' करना कठिन हो जाता है। अनेक त्रुटियाँ पूर्ववत् रह जाती हैं और प्रूफरीडर का परिश्रम व्यर्थ जाता है। फलत: प्रूफरीडर को दो की जगह तीन या चार बार प्रूफ देखना पड़ता है। हाँ, यदि दो-चार ही अशुद्धियाँ इधर-उधर हों, तो इस प्रकार के शोधन से कोई हर्ज़ नहीं है। बड़ी और महत्त्वपूर्ण कृतियों की 'डबल-रीडिंग' (दो अलग-अलग प्रूफरीडरों द्वारा रीडिंग) की जानी चाहिये।

तकनीक के विकास के साथ प्रूफ-रीडिंग की कला में भी बदलाव देखने को मिला है। पहले प्रिण्ट निकालकर हाथ से संशोधन किया जाता था। अब तो नये ज़माने के प्रूफरीडर सीधे कंप्यूटर में प्रूफ-रीडिंग कर लेते हैं। अंग्रेज़ी के लेखों को सुधारने में तो सॉफ़्टवेयर मदद करता है, पर वह शत-प्रतिशत कारगर नहीं है।

ध्यातव्य है कि एक छोटी-से-छोटी त्रुटि, चाहे वह किसी पुस्तक में हो, किसी पत्रिका में हो, समाचार-पत्र में हो, यहाँ तक कि सोशल मीडिया पोस्ट में ही क्यों न हो, पाठक के दिमाग़ में आजीवन लेखक की एक नकारात्मक छवि का निर्माण करती है।

कुमार गुंजन अग्रवाल के फेसबुक पेज से साभार